Department of Philosophy
D. B. COLLEGE, JAYNAGAR, MADHUBANI (BIHAR)
(A Constituent unit of L. N. Mithila University K. Nagar, Darbhanga)

Paper Indian Ethics (BA Part II Subsi.)

By:- Dr. Kumar Sonu Shankar
Assistant Professor (Guest)
August 21, 2020
kumar999sonu@gmail.com
8210837290, 8271817619
Lacture No. 19

(Class BA Part II Subsi.)

निष्काम कर्मयोग

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥

– श्रीमद्भगवद्गीता (५:१२)

अर्थ : कर्मयोगी कर्मों के फलका त्याग करके भगवत्प्राप्ति रूपी शान्ति को प्राप्त होता है और सकाम पुरुष कामना की प्रेरणा से फल में आसक्त होकर बंधता है ॥

भावार्थ :

कर्म दो प्रकार के होते हैं सकाम कर्म एवं निष्काम कर्म | सकाम कर्म अर्थात् फल की इच्छा को प्राप्त करने हेतु किया गया कर्म और निष्काम कर्म का अर्थ है बिना फल की इच्छा के कर्म करना | कर्मयोग अनुसार निष्काम कर्म करने पर कर्म अकर्म कर्म में परिवर्तित हो जाता है अर्थात् उस कर्म का कर्मफल नहीं बनता | कर्म का अकर्म होने हेतु, निष्काम कर्म और अकर्तापनयुक्त कर्म करना आवश्यक है| निष्काम कर्म करने से फल अच्छा मिले या बुरा, कर्मयोगी न अच्छा फल मिलने से सुखी होता है और न ही बुरा फल मिलने से दु:खी होता है| अतः वह सुख और दुखसे परे की स्थिति जिसे आनंद कहते हैं उसकी अनुभूति ले सकता है और यह तभी संभव है जब कोई निस्पृह रहे | कर्म करते समय यदि कर्म के फल की इच्छा होती है तो उससे सुख या दु:ख प्राप्त होता है और व्यक्ति कर्मफल के बंधन में बद्ध हो जाता है |

भगवद्गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन को निष्काम कर्मयोग का उपदेश देते हुए कहते हैं, "जो सुख-दुख, सर्दी-गर्मी, लाभ-हानि, जीत-हार, यश-अपयश, जीवन-मरण, भूत-भविष्य की चिन्ता न करके मात्र अपने कत्र्तव्य कर्म में लीन रहता है, वही सच्चा निष्काम कर्मयोगी है।

By:- Dr. Kumar Sonu Shankar
Assistant Professor (Guest)
August 21, 2020
kumar999sonu@gmail.com
8210837290, 8271817619
Lacture No. 19

परमात्मा स्वंय सृष्टि का नियामक संचालक होते हुए भी हमें विवेक बुद्धि देकर हमें कर्मों का अधिष्ठाता बनाया है। हमें कर्म करने की पूरी छूट है। चाहे तो हम सत्कर्म का मार्ग अपनाकर आत्मिक प्रगति की ओर बढ़ सकते हैं अथवा दुष्कर्मों में प्रवृत्त होकर अपनी अवनति का मार्ग प्रशस्त कर लें। भले बुरे कर्मो के लिए पूर्ण रूपेण उत्तरदायी मनुष्य ही हैं। मन की अपेक्षा यदि अपनी गतिविधियों को आत्मप्रेरणा के अनुरूप परिचालित किया जाए तो हमें कभी दुष्कर्मों की ओर बढ़ने का अवसर ही न प्रस्तुत हो। अस्तु कर्माकर्म का दायित्व अपने ऊपर न मान कर परमात्मा पर मानना अनासक्त कर्मयोग का गलत अर्थ लगाना है।

अनासक्त कर्मयोग शब्द स्वंय भी अपने वास्तविक आशय को प्रकट करता है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है- अनासक्त और कर्मयोग। अनासक्त का अर्थ है राग, मोह, प्रीति न रखना। अंहकार की उत्पति आसक्ति से होती है। दूसरा शब्द है कर्मयोग। गीता इसकी व्याख्या करती है, **"योग: कर्मसु कौशलम्"**- कर्म में कुशलता ही योग है। कार्य कुशल वही हो सकता है जिसे उचित अनुचित कर्मों के बीच स्पष्ट अन्तर का बोध हो।

कुशल शब्द के अन्तर्गत सत्यं, शिवं, सुन्दरम का भाव प्रवाहित है। इसलिए कार्य कुशलता में अशुभ कर्मों के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। अनासक्त कर्मयोग का वास्तविक तात्पर्य यही है कि किसी भी काम को पूरी कुशलता के साथ, कत्र्तापन का अभिमान छोड़कर किया जाए और उसके फल के प्रति निर्लिप्त रहा जाए। निष्काम कर्मयोग के तत्व दर्शन को हृदयंगम करने और इस राजमार्ग का अवलम्बन लेकर साधक संसार में रहते हुए भी स्वर्ग-मुक्ति का उच्चस्तरीय आनन्द प्राप्त कर सकता है।

जो पुरुष न किसी से द्वेष करता है, और न किसी की आकांक्षा करता है, वह निष्काम कर्मयोगी सदा संन्यासी ही समझने योग्य है, क्योंकि रागद्वेषादि द्वंद्वों से रहित हुआ पुरुष सुखपूर्वक संसाररूप बंधन से मुक्त हो जाता है।

By:- Dr. Kumar Sonu Shankar
Assistant Professor (Guest)
August 21, 2020
kumar999sonu@gmail.com
8210837290, 8271817619
Lacture No. 19

जीवन में या तो हम खिंचते हैं किसी से, आकर्षित होते हैं; या हटते हैं और विकर्षित होते हैं। या तो कहीं हम आकांक्षा से भरे हुए बंध जाते हैं, या कहीं हम विपरीत आकांक्षा से भरे हुए मुड़ जाते हैं। लेकिन ठहरकर खड़ा होना–आकर्षण और विकर्षण के बीच में रुक जाना–न हमें स्मरण है, न हमें अनुभव है। और आश्चर्य यही है कि न आकर्षण से कभी कोई व्यक्ति आनंद को उपलब्ध होता है और न विकर्षण से। दोनों के बीच जो ठहर जाता है, वह आनंद को उपलब्ध होता है।

राग का अर्थ है, खिंचना; द्वेष का अर्थ है, हटना। साधारणतः राग और द्वेष विपरीत मालूम पड़ते हैं, एक-दूसरे के शत्रु मालूम पड़ते हैं। लेकिन राग और द्वेष की जो शक्ति है, वह एक ही शक्ति है, दो नहीं। आपकी तरफ मैं मुंह करके आता हूं, तो राग बन जाता हूं। आपकी तरफ पीठ करके चल पड़ता हूं, तो द्वेष बन जाता हूं। लेकिन चलने वाले की शक्ति एक ही है। जब वह आपकी तरफ आता है, तब भी; और जब आपसे पीठ करके जाता है, तब भी।

सभी आकर्षण विकर्षण बन जाते हैं। और कोई भी विकर्षण आकर्षण बन सकता है। वे रूपांतरित हो जाते हैं। इसलिए राग-द्वेष दो शक्तियां नहीं हैं, पहले तो इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए। एक ही शक्ति के दो रूप हैं। घृणा और प्रेम दो शक्तियां नहीं हैं; एक ही शक्ति के दो रूप हैं। मित्रता और शत्रुता भी दो शक्तियां नहीं हैं; एक ही शक्ति की दो दिशाएं हैं।

इसलिए सारा जगत, सारा जीवन, इस तरह के द्वंद्वों में बंटा होता है–राग-द्वेष, शत्रुता-मित्रता, प्रेम-घृणा। ये एक ही शक्ति के दो आंदोलन हैं। और हमारा मन या तो प्रेम में होता है या घृणा में होता है। प्रेम सुख का आश्वासन देता है; घृणा दुख का फल लाती है। राग सुख का भरोसा देता है; द्वेष दुख की परिणति बन जाता है। राग आकांक्षा है, द्वेष परिणाम है। ये दोनों एक ही प्रक्रिया के दो अंग हैं, आकांक्षा और परिणाम।

कृष्ण कहते हैं निष्काम कर्मयोग की परिभाषा में, कि जो व्यक्ति राग-द्वेष दोनों के अतीत हो जाता है, वह निष्काम कर्म को उपलब्ध होता है।